क्रांति के बाद मिस्र की विदेश नीति में परिवर्तन

*डॉ. फ़ज़्ज़ुर रहमान सिद्दीकी**

किसी देश की विदेश नीति को मोटे तौर पर उस देश की आंतरिक या घरेलू नीति के तौर पर परिभाषित किया जा सकता है। वो नीति जो उस देश के अधिकतम हित में हो। विदेश नीति का निर्धारण उस देश के क्षेत्रीय और वैश्विक हितों की रक्षा करने और उसे बढ़ाने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसका उद्देश्य सिर्फ राष्ट्रीय हितों को सुदृढ़ करना ही नहीं होता , बल्कि उन राजनीतिक और आर्थिक बाधाओं को भी दूर करना होता है, जो उस देश के हितों के मार्ग को अवरुद्ध करे। किसी भी देश की विदेश नीति के निर्धारण के दौरान उसके अल्पकालीन और दीर्घकालीन हितों को ध्यान में रखा जाता है।

25 जनवरी 2011 को व्यापक जनविरोध की वजह से मिस्र में क्रांति का आग़ाज़ हुआ और आखिरकार फरवरी 2011 में राष्ट्रपति होस्नी मुबारक को सत्ता से बेदखल होना पड़ा। इसके बाद मिस्र की आंतरिक और बाह्य नीतियों को फिर से प रिभाषित करने का रास्ता साफ हुआ। इस शोधपत्र का उद्देश्य पिछले 6 सालों के दौरान तीन शासकों के शासनकाल में मिस्र की विदेश नीति में आए परिवर्तन का आकलन करना है।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो मिस्र की विदेश नीति सत्तारुढ़ कुलीन वर्ग द्वारा निर्धारित की जाती रही है। यहां आमतौर पर शासक और राज्य एक इकाई के तौर पर ही काम करते हैं। ऐसे में जहां राष्ट्रहित और शासक के हितों में भेद करने की बात हो , वहां ये पूरी तरह स्पष्ट नहीं होता। ज़्यादातर मौकों पर शासक का हित ही सर्वोपरि होता है। अरब के एक प्रतिष्ठित विद्वान मोहम्मद अयूब के मुताबिक , "तीसरी दुनिया में राष्ट्र और शासक की सुरक्षा के मामलों को सुलझाना अक्सर मुश्किल होता है।"

पिछले पांच सालों के दौरान मिस्र की विदेश नीति में हुए बदलाव को समझने के लिए इस बात को ध्यान में रखना ज़रुरी है कि क्रांति और बदलाव के दौर से गुजरा ये देश अपनी विदेश नीति की बुनियाद में क्रांतिकारी बदलाव चाहता है, लेकिन 1979 में ईरान के इस्लामी क्रांति के विपरीत मिस्र की क्रांति अपने शुरूआती दिनों में सुनियोजित नहीं थी। इस दौरान मिस्र में अक्सर ही "मुबारक तेल अवीव जाओ" जैसी विरोधी नारे सुनाई देते थे। सशस्त्र बलों की सर्वोच्च परिषद यानि SCAF के तहत 15 महीने वाली अंतरिम सरकार ने टकराव को ख़त्म कर विरोध की जगह आवास और असहमति की जगह विकास (CONVERGENCE) को प्राथमिकता दी। इसके उलट इस्लामी राष्ट्रपति मुर्सी का शासनकाल (जून

2012 - जून 2013) बयानबाजी और व्यवहारिकता का गवाह बना। मुस्लिम ब्रदरहुड (MBH) ने बयानबाजी और लफ्फेबाजी के दौर को राजनीतिक विरोधी के तौर पर स्थापित करने के उद्देश्य से निर्देशित किया।

जुलाई 2013 में राष्ट्रपति मुर्सी के निष्कासन के बाद अब्देल -फतह-अल-सीसी के शासनकाल में मिस्र की विदेश नीति में एक बार फिर होस्नी मुबारक का प्रभाव दिखा। अब्देल-फतह-अल-सीसी की विदेश नीति का झुकाव अपने शासन की वैधता स्थापित करने , आर्थिक दबाव को कम करने और आंतरिक सुरक्षा के खतरे से मुकाबला करने के लिए दूसरे देशों के साथ संगठन बनाने की ओर है।

मिस्र की विदेश नीति के विकास की पृष्ठभूमि

1952 में 'फ्री ऑफिस रिवोल्ट' के बाद कर्नल नासिर सत्ता में आए। इस वक्त तक मिस्र की कोई स्थायी विदेश नीति नहीं थी। किंग फारुख के सत्ता से जाने के बाद नए शासन को अपनी स्वतंत्र विदेश नीति के निर्धारण का मौका मिला। साम्राज्यवादी ताकतों से मुकाबला , फिलिस्तीन को समर्थन, एशिया और अरब के कई देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों को समर्थन, अरब एकता और वैश्विक ताकतों से दूरी बनाए रखना कर्नल नासिर की विदेश नीति के एजेंडा थे। मिस्र गुटनिरपेक्ष आंदोलन का संस्थापक सदस्य राष्ट्र था। गुटनिरपेक्ष आंदोलन का उद्देश्य समाजवादी और पूंजीवादी शक्तियों से तटस्थ दूरी बनाए रखना था। क्योंकि ये वैश्विक ताकतें नए स्वतंत्र देशों की राजनीति को प्रभावित कर रहे थे।

कर्नल नासिर की विदेश नीति का उद्देश्य वैश्विक नेता के तौर पर उसकी छवि को बेहतर बनाने और इस्लामी कट्टरपंथ और विरोधी क्रांतिकारी ताकतों से मुकाबला करने के नाम पर अपने निरंकुश शासन को कायम रखना था। नासिर की उग्र विचारधारा ने खाड़ी देशों के उन शासकों को भयभीत कर दिया जो इस्लामी विचारधारा के जरिए 'अरबिज्म' और समाजवाद का मुकाबला कर रहे थे। 1960 के दशक में दोनों गुटों में छद्म युद्ध शुरू हो गया। विडंबना देखिए आज पांच दशक बाद यमन के हाउदी में दोनों पक्षों का दुश्मन एक ही है।

जून 1967 में 6 दिनों तक चले युद्ध के बाद कर्नल नासिर का करिश्मा खत्म हो गया। नए राष्ट्रपति सादात सत्ता में आए। राष्ट्रपति सादात ने कर्नल नासिर को मिटाने के लिए इस्लामी शक्तियों का संगठन बनाया। उसने राष्ट्रवादी परिप्रेक्ष्य में परिभाषित विदेश नीति अपनाई। अपने उपर आर्थिक दबाव और कूटनीतिक नजरिए से उसने अमेरिका के साथ नजदीकी लेकिन दिखावटी संबंध बनाए। सादात की विदेश नीति का सबसे चौंकाने वाला किस्सा उनका औचक इज़राइली दौरा था, जो 1979 में दोनों देशों के बीच 'कैंप डेविड' शांति समझौते का आधार बना। राष्ट्रपति सादात ने अपनी विदेश नीति में आर्थिक महत्व को प्राथमिकता दी। इसी वजह से वो इज़रा इल के साथ अपने सैन्य समझौते के बदले अमेरिका से 1.3 बिलियन अमेरिकी डॉलर की वार्षिक सैन्य सहायता हासिल करने में भी सफल रहे।

कोई शक नहीं कि अपने इज़रा इली के दौरे के लिए राष्ट्रपति सादात को भारी कीमत चुकानी पड़ी और अक्टूबर 1981 में विजय दिवस की पूर्व संध्या पर एक कट्टरपंथी ने उनकी हत्या कर दी। राष्ट्रपति सादात के उत्तराधिकारी होस्नी मुबारक ने तीन दशक तक मिस्र पर शासन किया, लेकिन इस दौरान मिस्र की विदेश नीति में कोई ख़ास बदलाव नहीं आया। मुबारक की सबसे बड़ी उपलब्धि मिस्र की अरब घेरे में

वापसी रही और 1990 में काहिरा एक बार फिर अरब लीग का ऑफिस बन गया। अमेरिका-मिस्र-इज़राइल के गहरे संबंधों ने मुबारक को पैंतरेबाजी का ज़्यादा मौका नहीं दिया। आर्थिक और सैन्य सहायता के लिए अमेरिका पर निर्भरता, आतंरिक सुरक्षा के लिए बढ़ती आवश्यकता और क्षेत्रीय रणनीतिक जरुरतों ने उन्हें सादात द्वारा तय की गई नीतियों से ज्यादा भटकने की इजाज़त नहीं दी। इस दौरान राष्ट्रपति होस्नी मुबारक की विदेश नीति लगभग यथास्थिति बनी रही। क्षेत्रीय मामलों में उनकी भूमिका सीमित रही। फिलिस्तीन के ख़िलाफ़ बेहद आक्रामक विदेश नीति पर भी वो लगभग तटस्थ भूमिका निभाते रहे। अमेरिका पर लगातार आर्थिक और सैन्य निर्भरता, अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष, GCC और दूसरे पश्चिमी देशों से लिए गए कर्ज में माफी की मजबूरी ने उन्हें अमेरिकी-इज़राइली गुट की छतरी के नीचे घसीट लिया, और अब मिस्र - अमेरिका के लिए नरम रुख रखने वाले जॉर्डन और सऊदी अरब जैसे देशों में शुमार होने लगा।

SCAF और मुर्सी के शासनकाल में मिस्र की विदेश नीति

मुबारक के निष्कासन के बाद सबसे ज्यादा प्रसांगिक सवाल ये था कि अमेरिका के साथ 'कैंप डेविड' और मिस्र के संबंधों का भविष्य क्या होगा? जब सेनाध्यक्ष मोहम्मद हुसैन तांतवी के नेतृत्व में 19 सदस्यों वाली SCAF ने सत्ता संभाली तो उनके सामने सबसे बड़ी चुनौती अपने पड़ोसी देशों और ख़ासकर इज़रा इल के साथ अपने रिश्तों को बनाए रखने की थी। SCAF ने कैंप डेविड और मिस्र -इज़राइल शांति समझौते के लिए अपनी प्रतिबद्धता घोषित करने में ज़्यादा वक्त नहीं लिया। उसने ये भी भरोसा दिया कि इससे वैश्विक मानदंडों और समझौतों में कोई बदलाव नहीं आएगा। SCAF को अपने आर्थिक और राजनीतिक विशेषाधिकारों को बरकरार रखने और राष्ट्रीय सुरक्षा को बनाए रखने के लिए इज़रा इल के साथ घनिष्ठ सहयोग को बनाए रखने को कहा गया। इसके बाद इज़रा इल ने भी 1979 के बाद पहली बार सिनाई पेनिनसुला के ज़ोन-सी में मिस्र की फौजी टुकड़ियों की तैनाती की इजाज़त दे दी। ये कैंप डेविड समझौते के तहत एक गैर-फौजीकरण क्षेत्र था।

इस दौरान ईरान के साथ मिस्र के संबंधों में भी कुछ बदलाव देखने को मिला। मुबारक के निष्कासन के महज दस दिनों के भीतर ही दो ईरानी जहाजों को स्वेज नहर से होते हुए भूमध्य सागर में प्रवेश की अनुमति दे दी गई। 1979 के बाद ऐसा पहली बार हुआ था। मिस्र के विदेश मंत्री नबील -अल-अरबी (मार्च-जून 2011) ने वाशिंगटन पोस्ट को दिए एक इंटरव्यू में कहा कि वो ईरान के साथ मित्रता का संबंध चाहते हैं और ये उ नकी विदेश नीति का हिस्सा है। इसके बाद साल 2011 के जून महीने में मिस्र के शैक्षिक, धार्मिक, सामाजिक और मीडिया से जुड़े 50 लोगों का एक प्रतिनिधिमंडल दोनों देशों के बीच राजनयिक संबंधों की बहाली का मार्ग प्रशस्त करने तेहरान गया। मिस्र के विदेश मंत्री और ईरान के उनके समकक्ष ने दोनों देशों के बीच पूर्ण राजनयिक संबंधों की बहाली की घोषणा की। 25 मई 2011 को OIC सम्मेलन के दौरान दोनों की मुलाकात भी हुई।

सिर्फ ईरान के लिए ही मिस्र की नीति में बदलाव नहीं देखा गया , बल्कि इस दौरान फिलिस्तीन को लेकर भी नीति को फिर से परिभाषित किया गया। मार्च 20011 में हमास का एक प्रतिनिधिमंडल नबील-उल-अरबी से मिलने आया और दोनों पक्षों के बीच सिनाई प्रायद्वीप और गाजा पट्टी के बीच बने राफाह टनल पर बातचीत हुई। इस दौरान वेस्ट बैंक के फतह और गाजा में हमास के साथ सुलह पर भी चर्चा हुई। मई 2011 में दोनों देशों के बीच एक समझौता हुआ और चार साल के अंतराल के बाद राफाह टनल को एक बार फिर खोल दिया गया।

लेकिन नबील अहमद के अरब लीग के महासचिव बनाए जाने के बाद ये सारे सुधारवादी प्रयास रोक दिए गए। इसके फौरन बाद इज़राइल ने सिनाई प्रायद्वीप से दोनों देशों के प्रतिनिधियों को निकाल बाहर करने के लिए अगस्त 2011 में छापेमारी की कार्रवाई शुरू कर दी।

SCAF को नबील-उल-अरबी द्वारा शुरू किए सुधारवादी प्रयासों को ख़त्म करने में ज़्यादा वक्त नहीं लगा। ईरान को लेकर मिस्र की सेना के नज़रिए में अब भी कोई बदलाव नहीं आया था और वो भविष्य में ईरान के साथ कोई भी रिश्ता रखने के पक्ष में नहीं थी। एक विश्लेषक के मुताबिक -"जब तक मिस्र की सत्ता पर सेना का कब्जा है, तब तक मैं ईरान के साथ उसके रिश्तों का कोई भविष्य नहीं देखता।'' मिस्र की सेना हमास, हिज्बुल्ला और दूसरे वैचारिक आंदोलनों से ईरान की निकटता को हमेशा से संदेह की नज़र से देखती है। इस तरह SCAF के शासनकाल में भी मिस्र की विदेश नीति में नबील के एक छोटे से कार्यकाल में कोई बदलाव नहीं देखा गया। मिस्र के प्रधानमंत्री एसाम शरफ ने एक बार कहा था -"गौरवशाली क्रांति हुई, ताकि मिस्र के लोग देश और विदेश में अपनी गरिमा फिर से हासिल कर सकें । जो क्रांति से पहले बर्दाश्त किया गया, उसे क्रांति के बाद सहन नहीं किया जाएगा।"

SCAF के तहत मिस्र की विदेश नीति इज़रा इल और अमेरिका के साथ अपने संबंधों पर केंद्रित थी। SCAF ये पूरी तरह से मानता था कि विद्रोह आंतरिक रूप से संचालित किया गया था , इसलिए मुबारक की विदेश नीति को लागू करने में कोई बुराई नहीं है।

मुबारक के ख़िलाफ़ विद्रोह के बाद मुर्सी 2012 में सत्ता में आए। मुर्सी इज़राइल के सामने मिस्र को कमतर बनाने के लिए मुबारक की निंदा करते थे। मुस्लिम ब्रदरहुड की राजनीतिक इकाई फ्रीडम एंड जस्टिस पार्टी (FJP) ने भी येरुसलम और फिलिस्तीन के ठेकेदारों को बाजार दर से कम दाम पर गैस देने की मुबारक की नीति की आलोचना की थी।

फ्रीडम एंड जस्टिस पार्टी (FJP) ने क्षेत्रीय मामलों में मिस्र के लिए एक निर्णायक भूमिका की मांग की। इसके निर्धारण के लिए उसने अपने घोषणापत्र में विदेश नीति से जुड़े पांच घेरों को चिन्हित किया - मिस्र और उसके करीबी सहयोगी संगठन , मिस्र-अमेरिका, मिस्र-यूरोप, मिस्र-एशिया और बाकी दुनिया। इस्लामी विदेश नीति का उद्देश्य सेना , धर्मनिरपेक्षतावादियों और इस्लामी ताकतों की ज़रुरतों को पूरा करना था। इसके अलावा मुर्सी की वैचारिक विदेश नीति के मार्ग में कुछ और भी बाधाएं थीं, जैसे दूसरे देशों पर आर्थिक निर्भरता, आंतरिक सुरक्षा, इज़राइल के साथ सामरिक एकीकरण की मजबूरी और आखिर में सैलफिस्ट (SALFIST)। सैलफिस्ट - फ्रीडम एंड जस्टिस पार्टी (FJP) की राजनीतिक इकाई है, जिसने बाद में मुर्सी को ईरान के साथ नजदीकी संबंध बनाने से रोक दिया।

राष्ट्रपति मुर्सी ने एक सक्रिय विदेश नीति अपनाई। एक साल के भीतर उन्होंने दस देशों का दौरा किया और 6 अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में शिरकत की। पहला बड़ा बदलाव ईरान के प्रति मुर्सी के नए तेवर के रुप में दिखा।

अगस्त 2012 में गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में शिरकत करने के लिए मुर्सी ईरान गए। इसके साथ ही पिछले तीन दशक में वो ईरान का दौरा करने वाले मिस्र के पहले राष्ट्राध्यक्ष बने। इसके बाद ईरान के तत्कालीन राष्ट्रपति महमूद अहमदीनेजाद फरवरी 2013 में ओआईसी के शिखर सम्मेलन में भाग लेने और

संबंधों को और मधुर करने के मकसद से कहिरा आए। मार्च 2013 में 34 सालों के बाद दोनों देशों के बीच पहली उड़ान शुरू की गई। पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए भी दोनों देशों के बीच एक समझौते पर दस्तखत किए गए। सऊदी अरब , इज़राइल और अमेरिका के ख़िलाफ़ ईरान को FJP के तौर पर एक संभावित सामरिक सहयोगी नजर आया। वहीं दूसरी तरफ काहिरा की नई सरकार को लगा कि GCC, अमेरिका और इज़राइल के ख़िलाफ़ ईरान उसके लिए सौदेबाजी का एक चिप साबित हो सकता है।

ईरान के आध्यात्मिक नेता अली खुमैनी ने मिस्र के विद्रोह को इस्लामी जागृति करार दिया। उन्होंने इसे इस क्षेत्र में इस्लामी संस्कृति की नींव बताया। इसी बीच ईरान के तत्कालीन विदेश मंत्री ने इस क्षेत्र में मिस्र के महत्व को रेखांकित करते हुए उसके साथ सभी तरह के सामरिक संबंधों के लिए तैयार होने की बात कही। जबकि उप-विदेश मंत्री ने अपने मिस्र दौरे के दौरान दोनों देशों के रिश्तों को अनूठा करार दिया और कहा कि दोनों देशों के बीच पूर्ण राजनयिक संबंधों की बहाली मिस्र पर निर्भर करता है।

लेकिन दोनों देश पूर्ण राजनयिक संबंधों की बहाली में नाकाम रहे । क्योंकि मिस्र की अल नूर पार्टी (SALAFIST) शिया बहुल ईरान के साथ संबंधों को लेकर जल्दबाजी नहीं करना चाहती थी। कहा गया कि ईरान के साथ उसके नजदीकी संबंध सऊदी अरब और GCC के उसके सहयोगी देशों से मिलने वाली आर्थिक मदद को खतरे में डाल देगा। सैलफिस्ट के विरोध का ही नतीजा था कि एक समझौते के तहत ईरान से आए लोगों को काहिरा की मस्जिद देखने से रोक दिया गया।

मिस्र के पहले निर्वाचित राष्ट्रपति मुर्सी ने जुलाई 2012 में अपने पहले आधिकारिक दौरे के लिए मुसलमानों के पवित्र जगह मक्का को चुना। क्षेत्रीय संगठन में ये उनकी पहली भागीदारी थी और इस दौरान उन्होंने सीरिया के मुद्दे पर ईरान , सऊदी अरब, तुर्की और मिस्र को मिलाकर एक 'चौकड़ी' (संगठन) बनाने का प्रस्ताव रखा। सऊदी अरब में उन्होंने सीरिया के मुद्दे पर बात तो की लेकिन बहरीन के मुद्दे पर वो चुप रहे। इससे साफ हो गया कि वो GCC देशों को नाराज नहीं करना चाहते थे।

मुर्सी ने GCC के देशों को ये कहकर लुभाने की कोशिश की , कि उनका इरादा मिस्र की क्रांति को अरब के दूसरे देशों की सीमाओं तक फैलाने का नहीं है , जैसा ईरान पहले कर चुका है। सितंबर 2012 में संयुक्त राष्ट्र के 67वें अधिवेशन में उन्होंने इस क्षेत्र में मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अपनी प्रतिबद्धता ज़ाहिर की। भले मुर्सी GCC देशों के विरोध में ना हों लेकिन उन्हें _FJP के तौर पर सऊदी अरब का एक और विरोधी नजर आया , जो पहले से ही मौजूद ईरान , हमास और हिज्बुल्लाह की तिकड़ी का विस्तार था। यहां ये बताना ज़रुरी है कि अपने अंतिम दिनों में मुर्सी पर हमास , ईरान और हिजबुल्लाह के लिए जासूसी करने का आरोप लगा और देशद्रोह के लिए उन्हें मौत की सजा सुनाई गई।

मुर्सी GCC सम्राटों के आंतक को दूर करने में असफल रहे। ख़ासकर सऊदी अरब , जिसने जुलाई 2012 में काहिरा से अपने दूत को वापस बुला लिया। सऊदी अरब के तत्कालीन आंतरिक मंत्री प्रिंस नएफ के मुताबिक इस क्षेत्र की सभी मुश्किलें मुस्लिम ब्रदरहुड (MBH) की वजह से हैं और सऊदी अरब और यूएई दोनों MBH के उदय को रोकना चाहते हैं।

FJP के इस्लामी सरकार पर सऊदी अरब को भरोसा नहीं था। जबकि क़तर ने मुर्सी सरकार के खजाने में 8 बिलियन अमेरिकी डॉलर दिया था और अगले पांच साल के दौरान 18 बिलियन की अतिरिक्त

राशि के निवेश का वादा किया था। इसके अलावा देश में बिजली की कमी को दूर करने के लिए एक गैस सौदे की पेशकश भी की थी।

सऊदी अरब और दूसरे GCC देशों के ख़िलाफ़ और ईरान की तरह तुर्की ने भी FJP के शासन को समर्थन दिया। तुर्की के तत्कालीन प्रधानमंत्री और वर्तमान राष्ट्रपति रिसेप तईप एरडोगन क्रांति के बाद पहले राजनेता के तौर पर मिस्र के दौरे पर गए। तुर्की ने मिस्र के नए इस्लामी शासन को अपने सामरिक भागीदार और क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाने के तौर पर देखा। दूसरी तरफ मिस्र - सऊदी अरब से अलग एक इस्लामी सहयोगी चाहता था जो सऊदी सहयोगी देशों की मुख़ालफ़त कर सके। मुर्सी को ये भी लगा कि मुस्लिम ब्रदरहुड और AKP मिस्र में नई सरकार की छवि को बेहतर बनाने के लिए फिलीस्तीन में हमास का समर्थन कर सकता है।

FJP ने कैसे अपनी पुरानी विचारधार को छोड़कर यथार्थवादी विचारधारा अपनाई ये उसकी इज़राइल नीति से साफ झलकती है। राष्ट्रपति मुर्सी ने इज़रा इल के ख़िलाफ़ अपनी पिछली बयानबाजी को छोड़ने में ज़्यादा वक्त नहीं लिया और जल्द ही ये साफ हो गया कि विपक्ष के इज़रा इल विरोधी नारे उनके किसी काम नहीं आएंगे। एक पार्टी जिसने पहले इज़रा इल को ''हड़पनेवाले'' की संज्ञा दी थी, वो अब इसे भूलकर घर और मकान की राजनीति को प्राथमिकता दे रही थी। FJP ने सिर्फ 'कैंप डेविड' की समीक्षा की बात की थी और ऐसा लग रहा था कि ऐसा कट्टरपंथियों (Salafist) को खुश करने के लिए किया गया है। इसके बाद राष्ट्रपति मुर्सी को लगा कि 'कैंप डेविड' के साथ किसी भी तरह की छेड़छाड़ का सेना विरोध कर सकती है। इससे 1967 जैसे हालात दोबारा बन सकते हैं। इसके अलावा, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक और अमेरिका बेहद ज़रूरी आर्थिक और सैन्य सहायता भी रोक सकते हैं।

मुर्सी ने नवंबर 2012 में प्रधानमंत्री हशम कंदील को ''ऑपरेशन पिलर'' के तहत गाजा में संघर्ष विराम की मध्यस्थता और सरकार से बातचीत करने के लिए इज़रा इल भेजा। आखिरकार वो नवंबर 2012 में सीजफायर पर समझौता कराने में सफल रहे। इज़रा इल के परिप्रेक्ष्य में मुर्सी की यथार्थवादी नीति को अमल में लाया गया था, जबकि इस्लामी विचारधारा को अलग रख दिया गया था।
हमास अपने शासनकाल में अपनी विचारधारा को कायम नहीं रख पाया। हमास के बचाव में उतरना मुर्सी के लिए इसलिए भी मुश्किल था क्योंकि मिस्र की सेना का हमास के साथ पुराना बैर था। मुर्सी भी ना सिर्फ गाजा की घेराबंदी को ख़त्म करने की कोशिशों में नाकाम रहा बल्कि आतंकवाद के ख़िलाफ़ अभियान में इज़राइल और मिस्र के बीच आपसी सहयोग की वजह से उसने राफा सीमा को बंद करने का आदेश दे दिया। इस तरह बदली हुई परिस्थितियों में मिस्र के साथ नए संबंधों की नई परिभाषा लिखने की हमास की कोशिशें निराशा के साथ ख़त्म हो गईं। और ऐसा उसकी ईरान-हमास के साथ गठजोड़ में हो रहे परिवर्तन के प्रति उत्सुकता की वजह से हुआ।

राष्ट्रपति मुर्सी के शासनकाल में मिस्र और अमेरिका के संबंध साफ नहीं थे। अपने पूरे शासनकाल के दौरान FJP एक उदारवादी इस्लामी पार्टी की छवि बनाने के उद्देश्य से अमेरिका पर चुप्पी साधे रहा। चुनावों से पहले मुस्लिम ब्रदरहुड और अमेरिकी प्रशासन सम्पर्क में थे। मुबारक के मिस्र से निष्कासन के बाद MBH ने अमेरिका में अपना एक प्रतिनिधि मंडल भी भेजा था। मुर्सी के शासनकाल के दौरान अमेरिका की कुछ चिंताएं थीं, जैसे अल्पसंख्यक समुदाय के प्रति मुर्सी सरकार का रुख , हमास के साथ मिस्र के संबंध , इज़राइल के साथ सुरक्षा समझौता और देश के बाहर और भीतर की वैचारिक राजनीति। मुर्सी सरकार ने

अमेरिका के गैर सरकारी संगठन के संकट के निपटारे में अहम भूमिका निभाई। अमेरिका भी मिस्र की सरकार की तरफ सकारात्मक रुख रखता था। ऐसा माना जा सकता है कि गाजा के हमास की तरह मिस्र के मुस्लिम ब्रदरहुड के बहिष्कार का उसका कोई इरादा नहीं था। हालांकि मुर्सी अमेरिका के साथ अपने संबंधों को बेहतर बनाने के लिए ज़्यादा उत्सुक दिखाई नहीं दिए और मिस्र अपने क्षेत्रीय और घरेलू मसलों में ही उलझा रहा।

अपने छोटे से कार्यकाल में मुर्सी ने कई मुद्दों पर संतुलन साधने की कोशिश की। जैसे , मिस्र को उसके पारंपरिक संगठन का हिस्सा बनाए रखना , चीन तक अपने संबंधों का विस्तार और ब्रिक्स (BRICS) संगठन में शामिल होने की उसकी इच्छा। इन सभी नीतियों का उद्देश्य देश की आर्थिक स्थिति बेहतर बनाना था।

अल-सीसी का आग़ाज़ और पुरानी राह पर मिस्र

मुर्सी ज्यादा वक्त तक मिस्र पर शासन नहीं कर सके। धर्मनिरपेक्षवादियों के राजनीतिक और वैचारिक मतभेद, इस्लामी ताकतों और सेना के शासन में हस्तक्षेप की वजह से मुर्सी के लिए सत्ता को संभालना मुश्किल हो गया। इस संकट को हल करने की सारी कोशिशें बेकार साबित हुईं और आखिरकार 3 जुलाई 2013 को मुर्सी को सत्ता से हटाकर जेल भेज दिया गया। इस तरह मिस्र की पहली निर्वाचित सरकार एक साल से ज़्यादा वक्त तक सत्ता में नहीं रह सकी। मिस्र के मुख्य न्यायाधीश अदली मंसूर को इसी दिन अंतरिम राष्ट्रपति बनाया गया। जबकि अल -सीसी को रक्षा मंत्री के साथ उपप्रधानमंत्री का कार्यभार सौंपा गया। 8 जून 2014 तक अदिल मंसूर राष्ट्रपति के पद पर बने रहे, जब तक कि अल-सीसी नए राष्ट्रपति के तौर पर नहीं चुन लिए गए।

अपने एक साल के कार्यकाल के दौरान अदली मंसूर का पूरा ध्यान मिस्र में कानून और व्यवस्था की बहाली पर रहा। इस दौरान पहले से तय विदेश नीति के दायरे में मिस्र की छवि सुधारने की कोशिश की गई। इस दौरान 30 जून की क्रांति के लक्ष्यों को आम लोगों तक पहुंचाने पर ख़ास ध्यान दिया गया। तत्कालीन विदेशमंत्री नबील फहमी के मुताबिक , ''विदेश मंत्रालय 30 जून की क्रांति के लक्ष्यों को आम लोगों तक पहुंचाने की मुहिम को सर्वोच्च प्राथमिकता दे रहा है।''

राष्ट्रपति मंसूर के शासनकाल में मिस्र और अमेरिका के संबंधों में थोड़ी कड़वाहट आई। ये तब पता चला जब मुर्सी के निष्कासन से नाराज अमेरिका ने मिस्र को महज 10 हेलिकॉप्टर्स की ही डिलीवरी दी। इसके बाद अमेरिका से मतभेदों को दूर करने की कोशिशों के तहत तत्कालीन विदेश मंत्री नबील फहमी को अप्रैल 2014 में अमेरिकी दौरे पर भेजा गया। वहां विदेश मंत्री ने अपने देश का पक्ष रखते हुए कहा कि ''मिस्र की जनता ने लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना की खातिर दो बार विद्रोह किया। '' हालांकि इसके बाद भी नबील फहमी को अमेरिका में व्यापक विरोध का सामना करना पड़ा। विरोधी ''मुर्सी निर्वाचित और अल सीसी खारिज" (MORSI WAS ELECTED, AL SIsi IS REJECTED) का नारा लगा रहे थे। अदली मंसूर के शासनकाल में मिस्र के आर्थिक और सामरिक संबंधों को बेहतर बनाने का कूटनीतिक प्रयास किया गया। इस दौरान अपने पुराने सहयोगी रुस के साथ भी संबंधों को नए सिरे से बेहतर बनाने की कोशिश शुरू हुई। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि मुर्सी के निष्कासन और अल -सीसी के सत्ता में आगमन के बीच के एक साल के कार्यकाल में मिस्र की विदेश नीति में कुछ नई शुरूआत और कुछ अहम

बदलाव हुए। इस दौरान विदेश नीति में व्यापक और बहुयायामी दृष्टिकोण अपनाया गया और ये भी ध्यान रखा गया कि इससे पुराने संबंधों पर कोई नकारात्मक प्रभाव ना पड़े।

अल-सीसी जून 2014 में सत्ता में आए। इस दौरान मिस्र में विधायि का से जुड़ी संस्थाओं के अभाव में उन्हें कई अनर्गल अधिकार हासिल हो गए। सरकार के सारे फैसले के न्द्रीकृत हो गए। ज़्यादातर मामलों में निर्णय नहीं लिए जा रहे थे और जो लिए जा रहे थे वो नीतियों के अधिकार क्षेत्र के तहत थे। मुर्सी के शासनकाल के दौरान धर्मनिरपेक्ष ताकतें इस बात से नाराज थीं कि उन्होंने मिस्र की पारंपरिक विदेश नीति का पालन नहीं किया। ईरान और तुर्की से अचानक नजदीकि यां और सीरिया के विद्रोहियों को समर्थन का उनका फैसला वहां की सेना को भी नागवार गुजरा था। फिलिस्तीन में हमास के साथ मिलकर एक वैचारिक संघ बनाने के उनके फैसले की भी चौतरफा आलोचना हुई थी। ऐसे में सत्ता में आने के बाद अल-सीसी ने सबसे पहले मुर्सी के ऐसे तमाम फैसलों और नीतियों को पलट दिया।

अल-सीसी के सत्ता में आगमन का सऊदी अरब और सीरिया ने स्वागत किया। सऊदी अरब , यूएई और जॉर्डन ने भी राहत की सांस ली क्योंकि यहां के सुल्तान अ ब भी ईरान में इस्लामी क्रांति की यादों से चिंतित थे। यूएई की न्यूज़ एजेंसी ने मिस्र की सेना को जनता का रक्षक करार दिया , जबकि सऊदी अरब के किंग अब्दुल्ला ने मिस्र को एक अंधेरे रास्ते पर जाने से बचाने का श्रेय वहां की सेना को दिया।

क़तर की राय इनसे अलग थी। उसका मानना था कि नई सरकार को अपनी विश्वसनीयता हासिल करने के लिए और वक्त दिया जाना चाहिए था। मिस्र में सत्ता के बदलाव का सबसे बड़ा विरोध तुर्की ने किया। तुर्की के प्रधानमंत्री एरडोगन ने मुर्सी के तख्तापलट की निंदा की और वहां की सेना की भरपूर आलोचना। उन्होंने कहा कि , ''इससे फर्क नहीं पड़ता कि कहां और किसने तख्तापलट किया लेकिन ये अमानवीय है और वहां की सेना को लोकतंत्र और राष्ट्रीय इच्छाशक्ति के ख़िलाफ़ इस्तेमाल किया जा रहा है।''

बहरहाल अल-सीसी ने अपनी विदेश नीति में सेना को सबसे अहम जगह दी। उसके मुताबिक ''सेना इस देश की रीढ़ है और जनता उन्हें आदर की दृष्टि से देखती है , ऐसे में उसकी आलोचना या निरीक्षण देश के हितों को प्रभावित कर सकते हैं। '' अल-सीसी ने अपने पड़ोसी देशों के लिए सक्रिय विदेश नीति अपनाई। सऊदी अरब और यूएई उसके सहयोगी के तौर पर सामने आए। मिस्र की क्रांति से पहले निर्मित तुर्की-क़तर-हमास की तिकड़ी से मुकाबले के लिए सऊदी अरब - मिस्र का सहयोग चाहता था। इसी तरह वो इराक, सीरिया, यमन और लेबनान में भी मिस्र से सैनिक और कूटनीतिक मदद की उम्मीद रखता था। ऐसे में अल-सीसी ने पहल करते हुए खाड़ी देशों की सुरक्षा को मिस्र की सुरक्षा करार दिया और GCC के प्रति भी अपनी प्रतिबद्धता जाहिर की। अल सीसी के शासनकाल में मिस्र की विदेश नीति तीन घरेलू और क्षेत्रीय कारकों पर आधारित रही - इस्लामिक विचारधारा, भू-रणनीतिक चिंता और आर्थिक स्वायत्तता।

मिस्र की विदेश नीति का निर्धारण करने वाले वैचारिक कारक देश के बाहर और भीतर इस्लाम के ख़िलाफ़ युद्ध से प्रेरित थे। लिहाजा सितंबर 2013 में मुस्लिम ब्रदरहुड पर प्रतिबंध लगा दिया गया और फिर उसे आतंकवादी संगठन करार दे दिया गया। इसके ज़्यादातर नेताओं को या तो आजीवन कारावास की सजा सुना ई गई या फांसी पर लटका दिया गया। इस दौरान यूएई और सऊदी अरब के सहयोग से इस्लामिस्ट के ख़िलाफ़ एक वैश्विक मुहिम की भी शुरूआत की गई। इस्लामिस्ट के ख़िलाफ़ अपने आंदोलन

की वजह से ही मुर्सी को सत्ता से बाहर कर अल -सीसी राष्ट्रपति बने थे और अपनी सरकार की वैधता भी हासिल की थी। इसे कई लोग दूसरी क्रांति भी कहते हैं। मुस्लिम ब्रदरहुड और हमास के ख़िलाफ़ युद्ध के बहाने अल-सीसी मिस्र में जान-बूझकर लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना के विचार को टालते रहे। उ न्होंने इस्लामिस्ट का डर दिखाकर GCC देशों का भी समर्थन हासिल कर लिया , क्योंकि वो भी इससे डरे हुए थे।

कट्टरपंथी ताकतों के ख़िलाफ़ युद्ध ने उन्हें सीमा पार तक घसीट लिया। मिस्र के विमानों ने लीबिया के ISIS ठिकानों पर बमबारी की जब ISIS ने मिस्र के 21 श्रमिकों को मार डाला था। लीबिया में कर्नल हफ़तर को दिए खुले समर्थन को भी अल -सीसी की वैचारिक विदेश नीति के विस्तार के तौर पर देखा जा सकता है।

तुर्की के साथ मिस्र के बिगड़ते रिश्तों को वैचारिक विदेश नीति के परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है। अल-सीसी के शासनकाल में मिस्र की विदेश नीति तुर्की की प्री -इस्लामिस्ट विदेश नीति के लिए दीवार बन गई थी और आंतरिक नीति से इस्लामिक विषयों के ख़त्म होने की शुरुआत हुई थी। दूसरी तरफ मुस्लिम ब्रदरहुड का विरोध और हमास से पर्याप्त दूरी की अल -सीसी की नीति ने GCC पर मिस्र की आर्थिक निर्भरता को बढ़ा दिया। GCC से उसे सालाना 7.90 बिलियन अमेरिकी डॉलर की आर्थिक मदद मिल रही थी।

इस वक्त मिस्र को इस्लामिस्ट के खतरे से निपटने के लिए भी मदद की दरकार थी। सऊदी अरब , यूएई और कुवैत GCC में मिस्र के सबसे अहम सहयोगी देश थे। मुबारक का सत्ता से जाना GCC के लिए बड़ा नुकसान था लेकिन, जल्द ही सऊदी अरब और दूसरे देशों ने अल -सीसी के साथ भी बेहतर रिश्ते बना लिए। इस तरह मुबारक की नीति एक बार फिर मिस्र की विदेश नीति की अहम कड़ी साबित हुई। सऊदी अरब, कुवैत और यूएई ने मिस्र के खजाने को करोड़ों रुपए की मदद दी। मिस्र ने सऊदी अरब के पाले में शामिल होने में ज़्यादा वक्त नहीं लगाया। सऊदी अरब मुबारक के सत्ता से निष्कासन के बाद अमेरिकी नीति के प्रति अपना भरोसा खो चुका था। ऐसे में ईरान के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए उसे मिस्र के मदद की दरकार थी। मिस्र इस क्षेत्र में ईरान-इज़राइल-हमास के त्रिगुट के मुकाबले भी कारगर साबित हो सकता था।

मिस्र तुर्की पर नज़र बनाए हुए था जिसका इस क्षेत्र में काफी प्रभाव था। तुर्की ने अगस्त 2013 में राष्ट्रपति मुर्सी के तख्तापलट के दौरान काहिरा के राबा -अल-अदवइया में मारे गए लोगों की जांच के लिए सुरक्षा परिषद से आग्रह किया। तुर्की के पास अल-सीसी के विरोध की दो वजहें थी - पहला, खुद को इस्लाम समर्थक देश के तौर पर पेश करना और दूसरा अंतर राष्ट्रीय बिरादरी के बीच सैनिक तानाशाही के विरोध में खड़ा होना। तुर्की खुद भी नवंबर 2013 से अपने देश की सेना के ख़िलाफ़ ही लड़ाई लड़ रहा था। तुर्की के इस रुख के बाद मिस्र भी उसके ख़िलाफ़ खड़ा हो गया। उसने तुर्की के राजदूत को काहिरा से निष्कासित कर दिया। वो तुर्की विरोधी देशों के साथ मिलकर तुर्की के ख़िलाफ़ लामबंदी करने लगा। इस दौरान उसने ग्रीक प्रधानमंत्री और साइप्रस के राष्ट्रपति के आगमन की मेजबानी की। इस बैठक में दबाव बनाने की नीयत से तुर्की के विवादित गैस खोज पर चर्चा की गई और Exclusive Economic Zone (EEZ) के मुद्दे पर तुर्की को साइप्रस की संप्रभुता का सम्मान करने का कड़ा संदेश दिया गया। इज़रा इल और तुर्की के बेहतर होते रिश्तों की वजह से तुर्की के साथ मिस्र के रिश्ते और भी खराब हुए। इज़रा इल और तुर्की के बीच हुए

मैत्री समझौते के बाद तो मिस्र को ना तो गाजा में बंदरगाह की अनुमति मिली और ना ही बिजली पैदा करने वाले जहाजों को लंगर डालने की इजाज़त मिली। इसके जवाब में मिस्र ने सुरक्षा परिषद में तुर्की में तख्ता पलट की कोशिशों पर लाए गए निंदा प्रस्ताव का विरोध किया। ऐसा करने वाला वो इकलौता देश था। सबसे दिलचस्प बात तो ये थी कि उसने तुर्की की सरकार को लोकतांत्रिक और निवार्चित ढंग से चुनी हुई सरकार मानने से भी इंकार कर दिया।

मिस्र की विदेश नीति में कभी सांप्रदायिकता को जगह नहीं दी गई। जहां तक सीरिया का सवाल है तो मुर्सी के शासनकाल का वो पन्ना अब इतिहास की बात बन चुका है जब सुन्नी विद्रोहियों से एकजुटता दिखाते हुए सीरियाई शरणार्थियों को मिस्र में प्रवेश की इजाज़त दे दी गई थी।

अभी तक अल-सीसी ने मुस्लिम ब्रदरहुड से संभावित संबंधों की वजह से सीरियाई विद्रोहियों को ज़्यादा तवज्जो नहीं दी है। मिस्र ये भी मानता है कि असद के सत्ता से जाने के बाद सीरिया पर जिहादियों का कब्जा हो जाएगा, जो इस क्षेत्र के हित में नहीं होगा। बावजूद इसके वो सीरिया को लेकर खुले तौर पर कुछ भी कहने से बचता है, क्योंकि GCC सीरिया की सत्ता से असद के निष्कासन के पक्ष में है।

इज़राइल और मिस्र के घनिष्ठ संबंध मिस्र की आज की विदेश नीति में भू -रणनीतिक प्रधानता का सबसे स्पष्ट संकेत हैं। दोनों देश आतंकवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई और सीमा पर खुफिया जानकारी के आदान -प्रदान से करीब आए। दोनों के बीच इसी निकटता ने मिस्र के विदेश मंत्री शमेश शौकरी के इज़रा इल दौरे की पृष्ठभूमि तैयार की। पिछले एक दशक के दौरान दोनों देशों के बीच ये पहली राजनीतिक यात्रा थी। इस दौरे के दौरान दोनों देशों की बैठक तेल अवीव की जगह येरुसलम में आयोजित की गई। यहूदी आंदोलन के संस्थापक हर्ल्ज के साथ विदेश मंत्री के फोटो शूट ने भी दोनों देशों के रिश्तों में नई गर्माहट , नए आयाम और राजनीतिक सुलह के संकेत दिए। यही नहीं मिस्र के विदेश मंत्री ने इज़रा इल के प्रधानमंत्री के साथ येरुसलम में यूरो कप 2016 का फाइनल मैच भी देखा। शमेश शौकरी ने अपने एक वक्तव्य में कहा कि उनके इस दौरे का मकसद फिलिस्तीन और इज़रा इल को अपने मतभेदों को सुलझाने के लिए बातचीत के टेबल पर लाने की कोशिश करना था। इसके बाद अर्द्ध सरकारी अखबार अल हरम के हवाले से कहा गया कि फिलिस्तीन के संकट को हल करने के अपने ऐतिहासिक दायित्वों की वजह से मिस्र को इस विवाद के निपटारे में निर्णायक भूमिका निभानी होगी।

मिस्र के विदेश मंत्री का ये दौरा उस वक्त हुआ जब इज़रा इल के प्रधानमंत्री नेतन्याहू अपनी यूथोपिया और सूडान यात्रा को ख़त्म कर स्वदेश लौटे थे। यूथोपिया नील नदी पर एक बांध बना रहा है , जिससे मिस्र में जल की आपूर्ति प्रभावित होगी। ऐसे में कुछ जानकारों की मानें तो ये इस बात का इशारा है कि मिस्र, इज़राइल की मदद से यूथोपिया के साथ अपने द्विपक्षीय जल विवाद का निपटारा करना चाहता है। बताया जा रहा है कि मिस्र के एक कॉप्टिक चर्च के डेलिगेशन को हाल ही में इज़रा इल की चार यात्राओं के लिए भुगतान किया गया। रिपोर्ट के मुताबिक ऐसा मिस्र की सिक्युरिटी सर्विसेज के आदेश पर किया गया। इज़राइल ने ना सिर्फ मुर्सी को सत्ता से हटाने का समर्थन किया , बल्कि यूरोपीय देशों में अल-सीसी के नए शासन के लिए समर्थन भी जुटाया।

दोनों देशों के बीच बेहतर होते संबंधों को अगर मिस्र के नज़रिए से देखा जाए तो वो ये नहीं चाहेगा कि फिलिस्तीन संकट के निपटारे में उसकी संभावित भूमिका को कोई और देश हथिया ले। अभी

हाल ही में इस मुद्दे पर चर्चा के लिए अरब लीग की बैठक बुलाने के फिलिस्तीन के प्रस्ताव को अल -सीसी ने खारिज कर दिया। साथ ही उसने सुरक्षा परिषद के सामने इस मुद्दे को पेश करने की तारीख भी तय कर दी। सरकार ने हमास प्रतिनिधिमंडल के दौरे को ये कहकर रद्द कर दिया कि हमास ने सिनाई की सुरक्षा बढ़ाने के लिए ज़रुरी कदम नहीं उठाए। फिलिस्तीन के राष्ट्रपति अब्बास ने अल -सीसी के इज़रा इल और फिलिस्तीन बीच बिना शर्त बातचीत के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। जबकि फ्रांस ने ये मसला संयुक्त राष्ट्र में ले जाने को कहा है। ज़ाहिर है अपने पड़ोसियों से फिलिस्तीन के तनावपूर्ण संबंधों का फायदा इज़रा इल को मिलेगा।

इज़राइल के नज़रिए से देखें तो विवाद को सुलझाने के लिए मध्यस्थता करने वाले किसी भी पश्चिमी देश की तुलना में मिस्र के साथ वार्ता करना उसके लिए ज़्यादा आसान होगा। पश्चिमी देश इज़राइल को लेकर वैसे भी कठोर रुख रखते हैं। मिस्र -इज़राइल के बेहतर संबंध फिलिस्तीन विवाद को सुलझाने के लिए इज़रा इल पर बातचीत करने के अंत रराष्ट्रीय दबाव को भी कम करेगा। इस मुद्दे पर चौकड़ी (Quartet) देशों की शांति वार्ता की विफलता , फ्रांस की पहल और अमेरिका से मोहभंग के बाद मिस्र को ऐसा लगता है कि वो इस विवाद को सुलझाने में अहम भूमिका निभा सकता है।

इज़राइल-तुर्की के बेहतर रिश्ते भी मिस्र को इज़रा इल से दोस्ताना संबंध स्थापित करने के लिए मजबूर करते हैं , क्योंकि तुर्की को मिलने वाला किसी भी तरह का सामरिक लाभ मिस्र के हित में नहीं होगा। बहरहाल शिनाई में ISIS और दूसरे आतंकवादी संगठनों की उपस्थिति दोनों देशों के रिश्तों को एक नये मुकाम पर ले गया है।

अंत में आतंकवाद के ख़िलाफ़ युद्ध , ISIS का उदय, इस क्षेत्र में ईरान की बढ़ती भूमिका और नई क्षेत्रीय सुरक्षा ज़रुरतों ने दोनों देशों के बीच समन्वय को बेहतर बनाया है। इज़रा इल और मिस्र के बेहतर होते रिश्तों का प्रभाव काहिरा या तेल अवीव तक ही सीमित नहीं है। इसे इस उदाहरण से समझा जा सकता है कि सेल्फिस्ट नेता नीडा बक्कर ने अमेरिका के हॉ रवर्ड में इज़राइल के पूर्व विदेशमंत्री से मुलाकात की।

राजनीतिक अस्थिरता की वजह से मिस्र का आर्थिक ग्राफ लगातार गिर रहा है। इसका असर वहां की विदेश नीति और दूसरे देशों के साथ मिस्र के संगठन पर भी पड़ रहा है। राष्ट्रपति बनने के बाद अल -सीसी ने घोषणा की थी कि वो तभी लोकतंत्र की बहाली का समर्थन करेंगे जब देश का सकल घरेलू उत्पाद 5 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच जाएगा। उस वक्त उन्होंने जीडीपी को दो सालों में दोगुना करने का भी वादा किया था। ये अब 50% फीसदी के वार्षिक विकास दर के असंभव लक्ष्य तक पहुंच गया है। आज यहां बेरोजगारी दर 40% के आसपास है। जबकि बजट और चालू खाता घाटा क्रमश : 12% और 17% हैं। अफसोस की बात ये है कि आर्थिक विकास की खस्ता हालत की वजह से तेल की कीमतें गिर रही हैं , जिससे विदेशी मुद्रा भी कम हो रही है। दुनिया के सबसे बड़े व्यापारिक मार्गों में से एक स्वेज नहर के ज़रिए होने वाला कारोबार भी वर्ल्ड बैंक के व्यापार सूचकांक के आधे पर आ गया। इस आर्थिक बदहाली से उबरने के लिए ज़रुरी कर्ज, आर्थिक मदद और FDI केवल करीबी मित्र देशों, GCC के देशों और पश्चिमी देशों से लिया जा सकता है।

मुर्सी को सत्ता से हटाने के फौरन बाद GCC के तीन देशों - सऊदी अरब, यूएई और कुवैत ने मुश्किल हालात से निपटने के लिए मिस्र को 20 बिलियन अमेरिकी डॉलर की आर्थिक मदद दी। मार्च 2015 में शर्म-अल-शेख में आयोजित इकोनॉमिक कॉन्फ्रेंस के दौरान सऊदी अरब, यूएई और कुवैत ने चार-चार बिलियन डॉलर और ओमान ने 500 मिलियन अमेरिकी डॉलर का निवेश किया। 2015 में सऊदी अरब ने एक बार फिर 8 बिलियन डॉलर की आर्थिक सहायता का वादा किया और दोनों देशों ने मिलकर 8 बिलियन अमेरिकी डॉलर के अतिरिक्त संयुक्त निवेश कोष की स्थापना भी की। 2016 में सऊदी अरब और कुवैत ने एक बार फिर क्रमश : 3 बिलियन और 4 बिलियन अमेरिकी डॉलर की मदद दी , जो 'कुवैत फंड फॉर अरब इकोनॉमिक डेवलपमेंट ' के 1.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर से अलग थे। 'द इकोनॉमिस्ट' की एक रिपोर्ट के मुताबिक सिर्फ इन तीन देशों ने 25 बिलियन अमेरिकी डॉलर की आर्थिक नगद मदद दी जो सिर्फ बजट घाटे के संतुलन के लिए खर्च किया जाएगा। सऊदी अरब से लगातार मिल रहे आर्थिक मदद के साथ-साथ एक तथ्य ये भी है , जैसा कि सऊदी अरब के तत्कालीन वित्त मंत्री ने मिस्र को आगाह करते हुए कहा था कि "सऊदी अरब हमेशा मिस्र को इस तरह की आर्थिक सहायता नहीं दे पाएगा।"

GCC से मिलने वाली आर्थिक मदद के बदले यमन के ख़िलाफ़ जारी युद्ध में मिस्र ने सऊदी अरब के लिए सैन्य और कूटनीतिक सहायता को बढ़ा दिया है । साथ ही मिस्र उन पहले देशों में शुमार है जो सऊदी अरब की अगुवाई वाले इस्लामिक मिलिट्री एलायंस में शामिल हुए हैं। हालांकि मिस्र के पास इसके अलावा कोई चारा भी नहीं था क्योंकि सऊदी अरब , यूएई और कुवैत क्रांति के बाद दिवालिया हो चुके मिस्र को लगातार आर्थिक मदद दे रहे हैं। राष्ट्रपति अल-सीसी ने एक बार कहा था कि "GCC का एक देश हर महीने उन्हें 900 मिलियन अमेरिकी डॉलर की मदद दे रहा है , लेकिन ये हमेशा के लिए नहीं है। " मिस्र का कुल कर्ज बढ़कर 20 बिलियन डॉलर तक पहुंच गया है। आर्थिक सुधारों और उदारीकरण के नाम पर धन का इस्तेमाल वहां की तानाशाही को और मजबूत करने के लिए किया जा रहा है।

अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष का 12 बिलियन अमेरिकी डॉलर और अफ्रीकी विकास बैंक के तीन चरण में दिए जाने वाले 1.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर के मदद का वादा ये साबित करते हैं कि मिस्र की आर्थिक ज़रुरतों की वजह से उसपर विदेश नीति को निर्धारित करने का दबाव बन रहे हैं। 1979 में कैंप डेविड पर हस्ताक्षर के बाद से ही मिस्र को लगातार हर साल 2 बिलियन डॉलर की अमेरिकी मदद मिलती आ रही है, जिसका सबसे बड़ा भाग वहां की सैन्य ज़रुरतों पर खर्च किया जाता है। माइक्रो इकोनॉमिक्स प्रोग्रेस और विकास के लिए मिस्र को अब तक विश्व बैंक से भी अरबों डॉलर की मदद मिल चुकी है।

राष्ट्रपति अल-सीसी के शासनकाल में मिस्र के वैश्विक संबंधों में कुछ बदलाव दिख रहा है। अमेरिका ने हाल ही में द्विपक्षीय सैन्य अभ्यास को रद्द कर दिया और अपाचे हेलिकॉप्टर जैसे कुछ हथियारों की सप्लाई भी रोक दी। दूसरी तरफ रुस के साथ मिस्र के संबंध मजबूत होते दिख रहे हैं। अल सीसी ने राष्ट्रपति बनने के बाद 2013 में रुस का दौरा किया था। 2015 में उन्होंने एक बार फिर रुस का दौरा किया और इस दौरान उन्होंने रुस के साथ 3.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर के हथियारों के सौदे और मिस्र के परमाणु कार्यक्रम को बढ़ावा देने में सहयोग संबंधी करार पर दस्तखत किए। मिस्र शिनाई में 2015 में मार गिराए गए रुसी प्लेन मामले की जांच में भी पूरा सहयोग दे रहा है। दोनों देशों का कई अहम मसलों पर एक जैसा झुकाव है, जैसे ISIS के ख़िलाफ़ लड़ाई और असद के शासन का भविष्य।

उपसंहार:

इन सभी तथ्यों की रोशनी में देखें तो यही निष्कर्ष निकलता है कि पिछले पांच सालों के दौरान कई शासनकालों में मिस्र की विदेश नीति बदलाव के कई दौर से गुजरी है। मुबारक के कार्यकाल के दौरान SCAF के अंतर्गत मिस्र की विदेश नीति पारंपरिक आर्थिक हितों पर आधारित थी , जो पहले से चली आ रही थी। ईरान से आमना-सामना होने पर विदेश नीति में कुछ बदलाव ज़रुर हुए , लेकिन ये सेना के आदेश पर नहीं थे और अल-सीसी के सत्ता में आने के कुछ ही दिनों बाद स्थिति पुराने समीकरण पर आ गई। अपने 15 महीने के कार्यकाल में SCAF का ज़्यादातर वक्त देश की आंतरिक राजनीतिक स्थिति को संभालने में ही व्यस्त रहा। वैसे ही मुर्सी के शासनकाल ईरान , तुर्की और हमास को लेकर कुछ वैचारिक प्रतिबद्धताओं को पूरा करने की कोशिश की गई। हालांकि ये कोशिश मिस्र की विदेश नीति में कोई बदलाव की छाप नहीं छोड़ पाई। मुर्सी के एक साल के कार्यकाल के दौरान मिस्र की इज़रा इल विरोधी सोच पूरी तरह गायब दिखाई दी। इसके बावजूद अमेरिका का उसके प्रति रवैये पर कोई असर नहीं पड़ा। मुर्सी ने एक देश के तौर पर मिस्र की भूमिका को बढ़ाने की कोशिश की। लेकिन उस वक्त की परिस्थितियों में उसकी पैंतरेबाजी काम नहीं आ सकी। अपने एक साल के कार्यकाल के दौरान राष्ट्रपति मुर्सी ने वैचारिक लक्ष्यों के ज़रिए देश की आर्थिक और सुरक्षा ज़रुरतों को पूरा करने की भी कोशिश की। वो लीबिया और यूथोपिया के साथ करीबी संबंध बनाने में नाकाम रहे और उन्होंने दूसरे राष्ट्रीय मुद्दों पर गंभीरता नहीं दिखाई। उनका ध्यान मुस्लिम ब्रदरहुड की राजनीतिक विचारधारा पर आधारित विदेश नीति को लागू करने पर ज़्यादा और दूसरे ज़रुरी मुद्दों पर कम रहा।

अल-सीसी का प्राथमिक उद्देश्य मुर्सी की विदेश नीति को पलटना रहा। मुर्सी के शासन से हटते ही मिस्र और ईरान के संबंध गहरे हो गए जबकि तुर्की और हमास के साथ संबंध बिगड़ते चले गए। आर्थिक, भू-रणनीतिक और वैचारिक कारणों ने उनकी विदेश नीति को आकार दिया और सबसे ज़्यादा ज़रुरी GCC देशों के साथ हुए करार से देश के आर्थिक हालात मजबूत हुए। ये तीनों कारण लगातार अल -सीसी के कार्यकाल में विदेश नीति को आकार दे रहे हैं। लेकिन देश के आंतरिक और राष्ट्रीय सुरक्षा और वैचारिक युद्ध की वजह से मिस्र में लोकतंत्र की स्थापना में देरी हो रही है। हालांकि अल-सीसी के अचानक रुस की ओर बढ़ते झुकाव से अमेरिका के साथ उसके संबंधों पर अब तक कोई असर नहीं पड़ा है , क्योंकि अमेरिका लंबे अर्से से उसका आर्थिक और सैन्य सहयोगी रहा है। मिस्र का GCC और इज़राइल के साथ आर्थिक और भू-रणनीतिक सहयोग आने वाले वक्त में उसकी विदेश नीति की ख़ास पहचान होगी। ISIS के बढ़ते दायरे और घरेलू संकट में तुर्की की बढ़ती दखंलदाजी से मिस्र-इज़राइल-GCC गठबंधन और मजबूत होगा।

*****

** डॉ. फ़ज़्लुर रहमान सिद्दीक़ी इंडियन काउंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स, नई दिल्ली में शोधकर्ता हैं।*

डिस्क्लेमर: उपरोक्त विचार लेखिका के अपने विचार हैं और ये काउंसिल के विचारों को प्रतिबिंबित नहीं करते